सांख्यदर्शन में 'पुरुष' तत्त्व का विवेचन

डा० विशाल भारद्वाज*

सारांश -

भारतीय ज्ञान परम्परा में दर्शन का विशेष महत्वा है। सांख्यदर्शन में 'पुरुष' तत्त्व को शुद्ध, नित्य और स्वयंसिद्ध चेतना माना गया है। यह पूर्णतः निर्गुण, निष्क्रिय और अविकारी सत्ता है, जो न किसी कर्म में प्रवृत्त होती है और न किसी विकार को ग्रहण करती है। पुरुष का मुख्य स्वरूप *साक्षित्व* है वह केवल देखने वाला, जानने वाला और अनुभव का आधार प्रदान करने वाला तत्त्व है। प्रकृति और उसके त्रिगुणों सत्त्व, रजस् और तमस् से पुरुष का कोई वास्तविक संबंध नहीं होता; दोनों अनादि होने पर भी परस्पर भिन्न हैं। फिर भी, उनके सामीप्य से ही व्यक्त जगत की प्रक्रिया प्रारंभ होती है और जीव में कर्तृत्व-भोक्तृत्व का मिथ्या आरोप होता है। सांख्य के अनुसार प्रत्येक जीव के भीतर एक स्वतंत्र पुरुष स्थित है। प्रकृति के व्यवहार से अलग होते ही पुरुष की स्वाभाविक मुक्त अवस्था का बोध होता है। इस प्रकार पुरुष सांख्य मीमांसा का मूल आध्यात्मिक आधार है।

कुञ्जी शब्द - ज्ञान, दर्शन, सांख्यदर्शन, पुरुष, तत्त्व, शुद्ध, नित्य, स्वयंसिद्ध, चेतना, निर्गुण, अविकारी, साक्षित्व, प्रकृति, त्रिगुण, सत्त्व, रजस्, तमस्, अनादि, मुक्त, मीमांसा।

प्रस्तावना -

भारतीय दर्शन के अन्तर्गत षड् आस्तिक तथा तीन नास्तिक दर्शनों की गणना की जाती है। जिसमें वेद एवं परमात्मा के अस्तित्व को स्वीकार किया जाता है, ऐसे षड् आस्तिक दर्शन हैं- कपिलमुनि का सांख्यदर्शन, पतंजलि का योगदर्शन, कणाद ऋषि का वैशेषिकदर्शन, गौतम ऋषि का न्यायदर्शन, जैमिनी की पूर्वमीमांसा तथा ऋषि बादरायण कृत उत्तरमीमांसा। यह उत्तरमीमांसा ही वेदान्त के नाम से प्रसिद्ध है। जिसमें युक्ति को सर्वश्रेष्ठ प्रमाण माना जाता है, प्रत्येक वस्तु की

सृष्टि स्वभाव (अपने आप) से मानी जाती है, ईश्वर को सृष्टि का कर्ता और वेद को ईश्वर का ज्ञान नहीं माना जाता ऐसे तीन नास्तिक दर्शन हैं - बौद्धदर्शन, जैनदर्शन तथा चार्वाक दर्शन –

युक्तिर्बलीयसी यत्र सर्वं स्वाभाविकं मतम्।
कस्यापि नेश्वरः कर्ता न वेदो नास्तिकं हि तत्।।[1]

सांख्यदर्शन के लक्षण को प्रतिपादित करते हुये महर्षि शुक्राचार्य का कथन है कि जिसमें पुरुष (आत्मा, परमात्मा), अष्ट प्रकृति (महत्, अहंकार तथा पंच तन्मात्राओं का समूह) तथा सोलह विकार (पंच ज्ञानेन्द्रिय समूह, पंच कर्मेन्द्रिय समूह, मन तथा पंचमहाभूत) - इन पच्चीस तत्त्वों की संख्या की विशेषता हो, उसे 'सांख्य-शास्त्र' कहते हैं -

पुरुषोऽष्टौ प्रकृतयो विकाराः षोडशेति च।
तत्त्वादिसंख्यावैशिष्ट्यात् सांख्यमित्यभिधीयते।।[2]

सांख्यदर्शन के गूढ़ पुरुष विषयक ज्ञान को ऋषियों में मूर्धन्य भगवान् कपिल ने प्रस्तुत किया है। इसमें प्रकृति के विकारभूत प्राणियों की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय का चिन्तन किया गया है। परम ऋषि कपिल ने कृपापूर्वक इस पवित्र तथा सर्वश्रेष्ठ ज्ञान को अपने आसुरि नामक शिष्य को दिया, आसुरि ने इस ज्ञान को अपने शिष्य पंचशिख को प्रदान किया और उसने इस ज्ञान को अनेक रूपों में विस्तृत किया। शिष्य परम्परा से प्राप्त हुये इस ज्ञान को तत्त्वार्थदर्शिनी बुद्धि वाले ईश्वरकृष्ण ने भली भान्ति जानकर आर्या नामक छन्द में पंचशिख के षष्टितन्त्र नामक ग्रन्थ को आधार बनाकर 70 कारिकाओं के माध्यम से 'सांख्यकारिका' नामक दार्शनिक पुस्तक में सरलतापूर्वक अभिव्यक्त किया है –

पुरुषार्थज्ञानमिदं गुह्यं परमर्षिणा समाख्यातम्।
स्थित्युत्पत्तिप्रलयाश्चिन्त्यन्ते यत्र भूतानाम्।।
एतत् पवित्रमग्र्यं मुनिरासुरयेऽनुकम्पया प्रददौ।
आसुरिरपि पंचशिखाय तेन च बहुधा कृतं तन्त्रम्।।
सप्तत्यां किल येऽर्थास्तेऽर्थाः कृत्स्नस्य षष्टितन्त्रस्य।
आख्यायिका विरहिताः परवादविवर्जिताश्चापि।।3

सांख्यदर्शन का मानना है कि प्रत्येक व्यक्ति का तीन प्रकार के दुःखों (आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक) से आत्यन्तिक निवृत्ति के लिये प्रयत्नशील होना स्वाभाविक है। किन्तु प्रत्यक्ष उपाय तथा वैदिक उपाय सर्वदा अनिवार्य तथा पूर्ण दुःखों के निवारण में असमर्थ हैं। इनके विपरीत व्यक्त (मूल प्रकृति), अव्यक्त (बुद्धि, अहंकारादि 23 तत्त्व) तथा ज्ञ (पुरुष) के भली-भान्ति ज्ञान से मनुष्य इन दुःखों से सदा-सदा के लिये निवृत्त होने में समर्थ हो जाता है-

दुःखत्रयाभिघाताज्जिज्ञासा तदपघातके हेतौ।
दृष्टे साऽपार्था चेन्नैकान्तात्यन्ततोऽभावात्।।

दृष्टवदानुश्रविकः स ह्यविशुद्धिक्षयातिशययुक्तः।
तद्विपरीतः श्रेयान् व्यक्ताव्यक्तज्ञविज्ञानात्।।[4]

सांख्यदर्शन पच्चीस तत्त्वों पर आधारित है। किसी से उत्पन्न न होने के कारण 'अविकृति' कहलाने वाली मूल प्रकृति जोकि 'व्यक्त' नाम से भी जानी जाती है, उससे महत् तत्त्व (बुद्धि) की उत्पत्ति होती है। महत् तत्त्व से अहंकार, अहंकार से पंच तन्मात्रायें (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध), पंच ज्ञानेन्द्रिय समूह (श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, घ्राण), पंच कर्मेन्द्रिय समूह (वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ) तथा मन की उत्पत्ति होती है। पंच तन्मात्राओं से पंचमहाभूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश) उत्पन्न होते हैं। महत् तत्त्व से लेकर पंचमहाभूतों को 'अव्यक्त' की संज्ञा दी जाती है। किसी से उत्पन्न होने तथा किसी को उत्पन्न करने के कारण महत्, अहंकार तथा पंच तन्मात्राओं का समूह 'प्रकृति' तथा 'विकृति' भी कहलाते हैं। पंच ज्ञानेन्द्रिय समूह, पंच कर्मेन्द्रिय समूह, मन तथा पंचमहाभूत किसी को उत्पन्न नहीं करते, स्वयं किसी से उत्पन्न होने के कारण 'विकृति' भी कहलाते हैं। पुरुष नामक पच्चीसवां तत्त्व इन सभी से भिन्न है। वह न तो किसी से उत्पन्न होता है तथा न ही किसी को उत्पन्न करता है। इसलिये वह न तो प्रकृति है तथा न ही विकृति-

प्रकृतेर्महांस्ततोऽहंकारस्तस्माद् गणश्च षोडशकः।
तस्मादपि षोडशकात् पंचभ्यः पंचभूतानि।।[5]
मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्या प्रकृतिविकृतयः सप्त।
षोडशकस्तु विकारो न प्रकृति र्न विकृतिः पुरुषः।।[6]

पुरुष की विशेषताओं का विवेचन करते हुये बताया गया है कि पुरुष कतिपय बातों में व्यक्त तथा अव्यक्त से सर्वथा भिन्न है। व्यक्त तथा अव्यक्त अर्थात् 24 तत्त्व सत्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुण से युक्त हैं, जबकि पुरुष निर्गुण एवं गुणातीत है। व्यक्त तथा अव्यक्त अविवेकी हैं, परन्तु सही एवं गलत का निर्णय करने की क्षमता से युक्त पुरुष विवेकशील है। व्यक्त तथा अव्यक्त तत्त्व सामान्य कहलाते हैं, जबकि पुरुष का इन सबमें विशिष्ट स्थान होने के कारण वह विशेष है। सांख्य के 24 तत्त्व जड़ हैं, परन्तु सांख्य का पच्चीसवां तत्त्व 'पुरुष' चेतनधर्म से युक्त है। व्यक्त तथा अव्यक्त तत्त्व प्रसवधर्मी हैं अर्थात् उनसे आगे से आगे विभिन्न तत्त्वों का प्रादुर्भाव होता है, जबकि पुरुष न तो स्वयं किसी से उत्पन्न होता है तथा न ही इससे किसी की उत्पत्ति होती है -

त्रिगुणमविवेकिविषयः सामान्यमचेतनं प्रसवधर्मि।
व्यक्तं तथा प्रधानं तद्विपरीतस्तथा च पुमान्।।[7]

व्यक्त तथा अव्यक्त 24 तत्त्व संहत तत्त्व हैं जोकि दूसरों के लिये होते हैं तथा जिसके लिये वे होते हैं, वह परमतत्त्व ही पुरुष है। तीनों गुणों के अभाव वाला यह पुरुष तत्त्व चैबीस तत्त्वों के अधिष्ठाता के रूप में आचरण करता है। ये पूर्वोक्त चैबीस तत्त्व भोग्य तत्त्व हैं जिनका उपभोग करने

वाला कोई और होता है तथा वह उपभोक्ता है - पुरुष। इस सृष्टि में यदि किसी की कैवल्य के प्रति प्रवृत्ति होती है, तो वह इस पुरुष तत्त्व की -

संघातपरार्थत्वात् त्रैगुण्यादिविपर्ययादधिष्ठानात्।
पुरुषोऽस्ति भोक्तृभावात् कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्च।।[8]

प्रकृति सक्रिय है तथा पुरुष निष्क्रिय। इसी प्रकार प्रकृति अचेतन है तथा पुरुष चेतन। परन्तु पुरुष के संयोग के कारण प्रकृति अचेतन होते हुये भी चेतनावान् के समान प्रतीत होती है तथा प्रकृति के संयोग के कारण पुरुष निष्क्रिय होते हुये भी क्रियाशील की भान्ति प्रतीत होता है-

तस्मात्तत्संयोगादचेतनं चेतनावदिव लिंगम्।
गुणकर्तृत्वेऽपि तथा कर्तेव भवत्युदासीनः।।[9]

पुरुष की अनेकता को सिद्ध करते हुये ईष्वरकृष्ण का कहना है कि सभी प्राणियों के जन्म, मृत्यु तथा इन्द्रियों की नियमपूर्वक प्रवृत्ति होने से अथवा प्रत्येक शरीर में एक ही काल में प्रवृत्ति न होने से तथा त्रैगुण्य (सत्व, रज, तम) की विषमता के कारण, तीनों गुणों के प्रत्येक शरीर में भिन्न होने के कारण पुरुष बहुत्व की सिद्धि होती है -

जनन-मरण-करणानां प्रतिनियमादयुगपत्यप्रवृत्तेश्च।
पुरुषबहुत्वं सिद्धं त्रैगुण्यविपर्ययाच्चैव।।[10]

सांख्यदर्शन में मन, बुद्धि तथा अहंकार को 'अन्तःकरण' की संज्ञा प्रदान की गयी है तथा पंच ज्ञानेन्द्रिय समूह एवं पंच कर्मेन्द्रिय समूह 'बाह्यकरण' कहलाता है। इन सभी में बुद्धि ही प्रधान रूप से पुरुष के समस्त भोग के साधनों की साधक है। वही भोग के साधनों का संचय करके पुरुष को समर्पित करती है, अतः वही प्रकृति तथा पुरुष के सूक्ष्म अन्तर को स्पष्ट करती है -

सर्वं प्रत्युपभोगं यस्मात्पुरुषस्य साधयति बुद्धिः।
सैव च विशिनष्टि पुनः प्रधानपुरुषान्तरं सूक्ष्मम्।।[11]

वस्तुतः ये अन्तःकरण तथा बाह्यकरण एक-दूसरे के अभिप्राय को जानकर अपने अपने व्यापार को सम्पन्न करने में प्रवृत्त होते है। इस व्यापार की प्रवृत्ति का मुख्य कारण पुरुषार्थ अर्थात् पुरुष का भोग तथा मोक्ष है -

स्वां स्वां प्रतिपद्यन्ते परस्पराकूत हेतुकां वृत्तिम्।
पुरुषार्थ एव हेतु र्न केनचित् कार्यते करणम्।।[12]

प्रकृति तथा पुरुष के संयोग को ही सांख्यदर्शन में सृष्टि का हेतु माना गया है। प्रकृति को अपना दर्शन कराना है तथा पुरुष को मोक्ष प्राप्त करना है। जिस प्रकार एक लंगडा तथा अन्धा - इन दोनों का संयोग गमन क्रिया में सहायक सिद्ध होता है, ठीक उसी प्रकार प्रकृति तथा पुरुष का संयोग इस सृष्टि का निमित्त होता है -

पुरुषस्य दर्शनार्थं कैवल्यार्थं तथा प्रधानस्य।
पङ्ग्वन्धवदुभयोरपि संयोगस्तत्कृतः सर्गः।।[13]

वस्तुतः प्रकृति का कार्य पुरुष के लिये भोग के साधनों को एकत्रित करना तथा उस तक पहुंचाना है ताकि वह मोक्ष प्राप्त कर सके। जिस प्रकार बछड़े के विकास के लिये अचेतन दूध माता के स्तनों में स्वतः उत्पन्न हो जाता है तथा जैसे मनुष्य अपनी उत्सुकता की शान्ति एवं अपनी इच्छा की पूत्ति के लिये विभिन्न प्रकार की चेष्टायें करते हैं, उसी प्रकार अचेतन प्रकृति तथा अव्यक्त पुरुष के मोक्ष के लिये सृष्टि कर्म में प्रवृत्त होते हैं -

इत्येष प्रकृतिकृतो महदादि विषेषभूतं पर्यन्तम्।
प्रतिपुरुष विमोक्षार्थं स्वार्थ इव परार्थ आरम्भः।।
वत्सविवृद्धिनिमित्तं क्षीरस्य यथा प्रकृतिरज्ञस्य।
पुरुषविमोक्षनिमित्तं तथा प्रवृत्तिः प्रधानस्य।।
औत्सुक्यनिवृत्यर्थं यथा क्रियासु प्रवर्तते लोकः।
पुरुषस्य विमोक्षार्थं प्रवर्तते तद्वदव्यक्तम्।।[14]

जिस प्रकार रंगशाला में नर्तकी नृत्य करने के उपरान्त रंगमंच पर स्वयं को पुनः प्रकट नहीं करती, ठीक उसी प्रकार एक बार जब प्रकृति अपने स्वरूप का दर्शन पुरुष को करवा देती है तो उसके पश्चात् प्रकृति निवृत्त हो जाती है, क्योंकि उसका उद्देश्य तो केवल पुरुष को अपने स्वरूप का दर्शन कराना था-

रंगस्य दर्शयित्वा निवर्तते नर्तकी यथा नृत्यात्।
पुरुषस्य तथाऽत्मानं प्रकाश्य विनिवर्तते प्रकृतिः।।[15]

प्रकृति से बढ़कर अधिक सुकुमार कोई नहीं है। पुरुष द्वारा प्रकृति का दर्शन करना विवेक ज्ञान प्राप्त करना माना जाता है। क्योंकि मैं देख ली गयी हूं अर्थात् पुरुष के द्वारा विवेक ज्ञान प्राप्त कर लिये जाने पर प्रकृति पुनः पुरुष के सम्मुख प्रकट नहीं होती -

प्रकृतेः सुकुमारतरं न किंचिदस्तीति मे मतिर्भवति।
या दृष्टाऽस्मीति पुनः र्न दर्शनमुपैति पुरुषस्य।।[16]

मैंने प्रकृति के स्वरूप को देख लिया है, ऐसा विचार करके चेतन पुरुष प्रकृति की उपेक्षा करता है तथा मैं देख ली गयी हूं, ऐसा विचार करके प्रकृति अपने को कार्य व्यापार से शून्य कर लेती है तथा ऐसा होने पर सृष्टि का कोई प्रयोजन नहीं रह जाता -

दृष्टा मयेत्युपेक्षक एको दृष्टाऽहमित्युपरमत्यन्या।
सति संयोगेऽपि तयोः प्रयोजनं नास्ति सर्गस्य।।[17]

इस भौतिक सृष्टि में चेतन पुरुष जरामरणकृत दुःख को प्राप्त करता रहता है। यह दुःख न तो प्रकृति को होता है, न ही बुद्धि को तथा न ही अहंकार को तथा न ही अन्य 21 तत्त्वों को।

जब तक पुरुष का लिंग शरीर के साथ सम्बन्ध बना रहता है, तब तक पुरुष को दुःख मिलता रहता है। लिंग शरीर के साथ सम्बन्ध विच्छेद होते ही पुरुष सभी प्रकार के दुःखों से मुक्त हो जाता है -

तत्र जरामरणकृतं दुःखं प्राप्नोति चेतनः पुरुषः।
लिंगस्याविनिवृत्तेस्तस्माद् दुःखं स्वभावेन।।[18]

शरीर पात हो जाने पर प्रकृति अपने अपवर्ग रूप दोनों ही कार्यों से कृत्कृत्य हो जाती है, तदनन्तर प्रकृति ज्ञान प्राप्त मुक्त पुरुष से निवृत्त हो जाती है। इस स्थिति में पुरुष निष्चित, अनिवार्य और शाश्वत अविनाशी दुःखत्रयाभाव रूप कैवल्य को प्राप्त कर लेता है -

प्राप्ते शरीरभेदे चरितार्थत्वात् प्रधानविनिवृत्तौ।
ऐकान्तिकमात्यन्तिकमुभयं कैवल्यमाप्नोति।।[19]

इस प्रकार स्पष्ट है कि सांख्यदर्शन में पुरुष ही एक ऐसा चेतन, निर्गुण तथा विवेकशील तत्त्व है, जोकि मोक्ष के लिये प्रयत्नरत है तथा प्रकृति एवं सूक्ष्मशरीर इसके सहायक का काम करते हैं।

सन्दर्भ -

1. शुक्रनीति, 4.3.53
2. शुक्रनीति, 4.3.47
3. सांख्यकारिका, 70-72
4. वही, 1-2
5. वही, 22
6. वही, 3
7. वही, 11
8. वही, 17
9. वही, 20
10. वही, 18
11. वही, 37
12. वही, 31
13. वही, 21
14. वही, 56-58
15. वही, 59
16. वही, 61
17. वही, 66
18. वही, 55
19. वही, 68

*सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर।